॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

ईशोपनिषद

विषय सूची

॥अथ ईशोपनिषद॥ 3
ईशोपनिषद् 4
शान्ति पाठ 13

॥ श्री हरि ॥

॥अथ ईशोपनिषद॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

ईशोपनिषद्

ॐ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १॥

हे मनुष्यो ! ये सब जो कुछ संसार में चराचर वस्तु हैं, ईश्वर से ही व्याप्त हैं। अर्थात् ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, उसी ईश्वर के दिए हुए पदार्थों से भोग करो, किसी के भी धन का लालच मत करो। अर्थात् किसी के भी धन को अन्याय पूर्वक लेने की इच्छा मत करो। ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २॥

इस संसार में मनुष्य वेदों में वर्णित शुभ कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे, अर्थात् नित्य नैमित्तिक शुभ कर्मों का त्याग कभी भी न करे। इस प्रकार से निष्काम कर्म करते हुए मनुष्य में (अधर्म युक्त) कर्म लिप्त नहीं होते, (मोक्ष प्राप्ति का) इससे अतिरिक्त और कोई अन्य मार्ग नहीं है। ॥२॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।

ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३॥

जो लोग अपनी आत्मा के विपरीत आचरण करने वाले हैं, वे आत्मघाती है। वे इस लोक में और मरने के अनन्तर भी निश्चय ही उन लोकों अर्थात् योनियों को प्राप्त लेते हैं। जो अज्ञानमय अन्धकार से आच्छादित हैं और प्रकाश रहित हैं अर्थात् जो लोग आत्मा और ईश्वर के ज्ञान के बिना ही इस संसार से कूच कर जाते हैं वे आत्म घाती हैं। उन लोगों ने अपनी आत्मा को हनन किया है यदि वे चाहते तो वैदिक कर्मानुष्ठान और ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र करके मोक्ष का अधिकारी बना सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसी लिये वे ऐसी ऐसी योनियों में जन्म पाते हैं जहाँ अज्ञान ही अज्ञान है, ज्ञान का नाम भी नहीं है। इस लिये मनुष्य को आत्म साक्षात्कार का सदैव प्रयत्न करना चाहिये और सांसारिक विषयों से मुख मोड़ कर परमात्म चिन्तन में जीवन लगाना चाहिये। ॥३॥

जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है जिसका पूर्व मन्त्र में व्याख्यान किया है वह ब्रह्म कैसा है अब इसका व्याख्यान करते हैं:

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४॥

जो ब्रह्म एक अर्थात अद्वितीय और अचल एक रस है, वह मन से भी अधिक वेग वाला है। वह सब जगह पहले से ही व्याप्त है। उस ब्रह्म तक इन्द्रियां नहीं पहुँचतीं, अर्थात् इन्द्रियों का विषय न होने के कारण इन्द्रियाँ उसको नहीं जान सकतीं। वह ब्रह्म स्वयं ठहरा हुआ भी है

तो भी दौड़ते हुए अन्य सब पदार्थों को उल्लङ्घन कर जाता है (क्योंकि दौड़ने वाले हर पदार्थ से पूर्व ही वह हर स्थान पर विद्यमान रहता है) उसी के भीतर वायु मेघादि रूप में जलों को धारण करता है। ॥४॥

फिर वह कैसा है

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५॥

वह ब्रह्म गति वाला है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ को गति देता हैं परन्तु स्वयं गति शून्य है, वह दूर भी है और समीप भी है। वह इस सारे संसार के अन्दर है और वही इस के बाहर है । जिस तरह चुम्बक पत्थर स्वयं गति न करता हुआ भी लोहे को गति दे देता है इसी प्रकार ब्रह्म में स्वयं गति नहीं है फिर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को वही गति प्रदान करता है और आत्मा में व्यापक होने से वह बहुत ही समीप है तथापि आँख में पड़े काजल के समान वह दिखाई नहीं देता। जिस तरह दिया सलाई की अग्नि बिना घिसे प्रकट नहीं होती इसी तरह ब्रह्म भी बिना योगाभ्यास के प्राप्त नहीं होता। ॥५॥

ब्रह्मज्ञान का फल क्या है ?

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६॥

जो मनुष्य चराचर जगत् को परमेश्वर में ही देखता है और सम्पूर्ण चराचर जगत् में ही परमात्मा को देखता है, वह निन्दित आचरण नहीं करता। अर्थात् जो मनुष्य परमात्मा को सर्वत्र व्यापक जानता है, वह उसके भय से कभी भी निन्दित आचरण नहीं करता। ॥६॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७॥

विशेष ज्ञान सम्पन्न योगी की दृष्टि में जब सम्पूर्ण चराचर जगत् परमात्मा ही हो जाता है उस अवस्था में परमात्मा के एकत्व को देखने वाले उस योगी के लिये मोह और शोक कहां। अर्थात् मोह और शोक के स्थान तो भौतिक पदार्थ हैं जब उनसे सम्बन्ध त्याग कर मुमुक्ष केवल एक ब्रह्म को ही सर्वत्र देखता है। तब उसे मोह शोकादि नहीं सताते । ॥७॥

जिस ब्रह्म के ज्ञान से शोक मोहादि की निवृत्ति होजाती है। उसके स्वरूप का अब प्रतिपादन करते हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः ॥ ८॥

वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, वह सर्व शक्तिमान् और शुक्र अर्थात् सकल जगत का उत्पादक है, वह अकाय अर्थात् स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित अतएव अव्रण अर्थात् शारीरिक विकार रहित

तथा नाड़ी और नस के बन्धन से रहित है। शुद्ध अर्थात् पवित्र और पापों से रहित है, सूक्ष्मदर्शी सर्व द्रष्टा और उपदेष्टा तथा मनीषी अर्थात् सब जीवों की मनोवृत्तियों का ज्ञाता, परिभूः सर्वोपरि वर्तमान, स्वयंभूः अर्थात् अजन्मा है वही अनादि काल से सब पदार्थों को रचता है अथवा अनादि जीवों के लिये यथावत् उपदेश करता है। ॥८॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥ ९॥

जो मनुष्य ज्ञान काण्ड की उपेक्षा करके केवल कर्म का सेवन करते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो लोग कर्म की उपेक्षा करके केवल (विद्यायाम्) अर्थात् ज्ञान में ही रमण करते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं। इस लिये उपासक को ज्ञान पूर्वक ही कर्म करने चाहिये। ॥९॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १०॥

वेद-ज्ञान से और प्रकार के फल प्राप्ति का वर्णन करते हैं। और कर्म से और प्रकार के फल प्राप्ति का वर्णन करते हैं। ऐसा हम उन ध्यानशील पुरुषों का वचन सुनते आ रहे है। जो हमारे लिए उन वचनों का व्याख्यान पूर्वक कथन करते रहे हैं।॥१०॥

अब विद्या और अविद्या की साथ उपासना से ही अमृत लाभ होता है। इसका वर्णन करते हैं।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११॥

जो मनुष्य विद्या को और अविद्या को अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों को साथ साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्म काण्ड के अनुष्ठान से निर्मलान्तः करण वाला पुरुष मृत्यु को तर कर विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। ॥११॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥१२॥

परमेश्वर को छोड़ कर जो लोग (असम्भूति) कारण प्रकृति की उपासना करते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं, उनसे अधिक वे अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं जो (सम्भूति) कार्य प्रकृति अर्थात् पृथिव्यादि के विकार पाषाणादि कार्य जगत् की ईश्वर भावना से उपासना करते हैं। ॥१२॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३॥

कार्य जगत् की उपासना से भिन्न फल प्राप्त होता है, और जड़ कारण की उपासना से अन्य फल प्राप्त होता है। ऐसे हम धीर पुरुषों के वचन सुनते आते हैं जो विद्वान् हमारे लिये उन वचनों का व्याख्यान करते रहे हैं । ॥१३॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४॥

जो मनुष्य कार्य रूप प्रकृति और विनाश अर्थात् कारण रूप प्रकृति इन दोनों को साथ साथ जानता है वह (विनाश) कारणात्मक प्रकृति के ज्ञान से मृत्यु को पार कर कार्य शरीर से ही अमृत पद को प्राप्त होता है इसका आशय यह है कि प्राकृतिक तत्व ज्ञान के बिना आत्मा और ईश्वर का विवेक नहीं हो सकता, इसलिये जब मनुष्य प्रकृति की वास्तविकता को जान लेता है तब जन्म मरण के बन्धन से छूट कर इस शरीर से ही जीवन मुक्त दशा को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है। ॥१४॥

प्रश्न-परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान मनुष्य को क्यों नहीं होता।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५॥

चमकीले सुवर्णादि के पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है। हे सबके पोषक परमात्मन् ! आप उस सत्य स्वरूप के दर्शन के लिये उस आवरण को हटा दो।

इसका यह आशय है कि धनका लालच ही मनुष्य को धर्म से से विमुख कर देता है। धन के लोभ मे मनुष्य अधर्म की ओर प्रवृत होता है। ऐसी दशा में सत्य स्वरूप भगवान् का दर्शन मनुष्य को कदापि नहीं हो सकता, इसलिये मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप उस आवरण को हटा दें, जिससे अविनाशी प्रभु के दर्शन हो सकें (यहां सत्य शब्द धर्म और ईश्वर दोनों का वाचक है)। ॥१५॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजः ।
यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि
॥ १६॥

हे सब के पुष्ट करने वाले ! हे एक द्रष्टा ! हे न्यायकर्ता ! हे सर्व प्रेरक अंतर्यामी! हे प्रजा रक्षक राजाधिराज परमेश्वर ! आप अपनी किरणों को फैला दें, और अपने तेज को मेरे दर्शन योग्य बना दें, ताकि आपकी कृपा से हम आप के अति कल्याणकारी रूप का साक्षात्कार कर सकें। अर्थात् आप मुझे इस योग्य बना दें कि मैं आपके प्रेम में मग्न हो कर आप के अतिरिक्त स्वयं को भी न देख सकूँ ॥१६॥

अब देहावसान समय में मनुष्य को क्या कर्तव्य है वह कहते हैं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतꣳ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर ॥ १७॥

अनेक शरीरों में आने जाने वाला जीव अमृत है मरण रहित अर्थात् नित्य है परन्तु यह शरीर केवल भस्म पर्यन्त है इस लिये अन्त समय में हे क्रतो ! हे जीव, ओ३म् स्मर, ओ३म् का स्मरण कर बल प्राप्ति के लिये परमात्मा का स्मरण कर, क्रतं स्मर, अर्थात् अपने किये हुए कर्मों का स्मरण कर। ॥१७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमौक्तिं विधेम ॥ १८॥

हे अग्ने प्रकाश स्वरूप हे देव ! दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मन् ! आप हमारे सम्पूर्ण कर्मों के जानने वाले हैं, इसलिये ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हम को अच्छे मार्ग से चलाइये । और हमको विपरीत मार्ग पर चलने रूप पाप से दूर कर दीजिये, हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं। ॥१८॥

शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति ईशोपनिषत् ॥

॥ ईशोपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥